मानव संस्कार ग्रन्थमाला – तेरहवाँ पुष्प

वेदों में बताये गये
उपदेशों व आज्ञाओं पर चल कर ही
मानव जीवन को सफल
बनाया जा सकता है।

अथर्ववेद आध्यात्मिक उपदेश

पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार के अथर्ववेदभाष्यम्
से संकलित 150 आध्यात्मिक उपदेश

संकलनकर्ता एवं प्रकाशक
मदन अनेजा
मो. 9873029000

प्रेरणा स्रोत

(15.06.1955- 27.04.2023)

श्रीमती स्वराज अनेजा

पत्नी श्री मदन अनेजा

भूमिका

वर्तमान काल में मानव, ऋषियों के यथार्थ ज्ञान से अनभिज्ञ होकर, भौतिकवाद और पाश्चात्य संस्कृति का पोषक और समर्थक बन गया है। अधिकतर मनुष्य संस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव और भोगवाद में लिप्त होने के कारण वेद और आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं कर पा रहे हैं। इस कारण अनैतिकता, भ्रष्टाचार व अनाचार सब तरफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य आध्यात्मिक शोषण, अन्धकार, अन्धविश्वास, दुराचार, दुर्व्यवहार का शिकार आज भी हो रहा है। इस कठिनाई, समस्या व स्थिति का समाधान करना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है।

उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक ''**अथर्ववेद आध्यात्मिक उपदेश**'' में 150 आध्यात्मिक उपदेशों का संकलन वेदों के प्रख्यात दार्शनिक एवं विचारक पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार द्वारा लिखित ''अथर्ववेदभाष्यम्'' से समाजहित में किया गया है।

आध्यात्मिक उपदेशों का प्रतिदिन स्वाध्याय, चिंतन व पालन करने से मुख्यत: निम्न लाभ हैं :-

1. ये उपदेश मनुष्य में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करते हैं और उसे पतन की ओर अग्रसर होने से रोकते हैं।
2. मानव को सृष्टिकर्ता व सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता का अनुभव कराते हैं।
3. व्यक्ति को परिपूर्ण, पवित्र एवं साहसी बनाते हैं।
4. मनुष्य को वैदिक ज्ञान से परिचित कराते हैं।
5. मनुष्य को अपनी इन्द्रियाँ वश में करने हेतु सहायता करते हैं

ताकि व्यक्ति इसी जन्म में ईश्वर की अनुभूति कर सके।

6. सब क्लेशों (कष्टों) का मूल अविद्या है। क्लेशों से ऊपर उठने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। प्रभु ने इस प्रकाश को उपदेशों के रूप में वेदवाणी में रखा है।
7. ये उपदेश भक्ति भावना को हृदय में निष्ठा एवं श्रद्धा जाग्रत करते हैं।
8. मनुष्य का दृष्टिकोण विशाल बनाते हैं और आदर्श जीवन जीने में सहायता करते हैं।
9. ये उपदेश आत्मसंतुष्टि प्रदान करने में सहायक हैं। हमें प्रभु का ज्ञान कराते हैं।
10. ये उपदेश जीवन में आई चुनौतियों का मुकाबला करने व स्वयं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में केवल आध्यात्मिक उपदेशों का ही संकलन किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये आध्यात्मिक उपदेश साधकों की, वेदों के प्रति रूचि उत्पन्न करेंगे और वे वैदिक धर्म को अपनाकर अपना व अन्यों के आध्यात्मिक जीवन को उन्नत व निष्पाप बनायेंगे।

पं. हरिशरण जी का भाष्य अति उत्तम है, सरल है। अतः आप से निवेदन है कि इन उपदेशों को विस्तार से समझने के लिए पं. हरिशरण जी के भाष्य का स्वाध्याय अवश्य करें।

नोट :- पुस्तक में दी गई मन्त्र से पूर्व संख्या इस पुस्तक की है और अन्तवाली संख्या अथर्ववेदभाष्यम् की है।

मदन अनेजा

1. **अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम्।**
सुपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम्।।

अथर्व0 1/9/2

उपदेश : प्राण शक्ति व प्रभु की ज्योति को प्राप्त करके हम लोक हित के लिए ज्ञान का प्रसार करें। उस ज्ञान से लोगों के मस्तिष्क, शरीर व हृदय को हम सुन्दर बनाने का प्रयत्न करें। लोग काम, क्रोध, लोभ को जीतने की भावना से भरे हों। इस लोकहित के द्वारा हम स्वर्ग के अधिकारी बनें। हमारा जीवन सुखी हो।

2. **निररणिं सविता साविषक्पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा।**
निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय।।

अथर्व0 1/18/2

उपदेश : पाँवों व हाथों में कमी आ जाने से सारी क्रियायें रूक जाती हैं। हाथ-पाँवों के सब दोषों को दूर करने के लिए आवश्यक है कि (क) हम निर्माणात्मक कार्यों में लगे रहें। तोड़-फोड़ के विध्वंसक कार्यों को करने वाले ही अपने हाथ-पैर विकृत कर बैठते हैं। (ख) हम द्वेष न करें, (ग) काम-क्रोध-लोभ का नियमन करके, हम स्नेह वाले हों। (घ) हम अनुकूल मति वाले हों, निराशा के विचारों वाले न हों क्योंकि प्रतिकूल मति विकृत भावों को पैदा करके अंगों की विकृति का कारण बनती है।

3. **विश्वेदेवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन्।**
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत्पौरुषेयो वधो यः।।

अथर्व0 1/30/1

उपदेश : सब प्राकृतिक शक्तियों की अनुकूलता में ही मनुष्य के स्वास्थ्य का रक्षण होता है। इसलिए दीर्घ जीवन के लिए आवश्यक है कि (क) जलवायु आदि देव अनुकूल हों, (ख) माता-पिता,

आचार्य आदि जागरूक रहकर बालक का निर्माण करें, (ग) पारिवारिक व सामाजिक सम्बन्ध ठीक हों और (घ) राष्ट्रीय व्यवस्था उत्तम हो।

4. **स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा।।**

अथर्व0 2/1/3

उपदेश : प्रभु ही सर्वश्रेष्ठ बन्धु है। वे हमारे कर्मानुसार हमें उचित लोक व स्थान में जन्म देते हैं। सूर्यादि सब देवों को भी वे ही शक्ति प्रदान करते हैं। सब व्यक्ति उस प्रभु की ओर चल रहे हैं, कई ठीक मार्ग से, कई अज्ञानवश, कुछ भ्रान्त मार्ग से, परन्तु अन्ततः सबको पहुँचना वहीं है।

5. **दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्य त्वगवयाता हरसो दैव्यस्य।
मृडाद्गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुवेशः।।**

अथर्व0 2/2/2

उपदेश : हम प्रभु के सम्पर्क में ज्ञान के द्वारा ही आ सकते हैं। वे प्रभु पूज्य, संगतिकरणयोग्य व समर्पणीय हैं। हमें उन्हीं की पूजा करनी चाहिए। दैवी विपत्तियाँ तभी आती हैं जब हम इन सूर्य आदि देवों के विषय में गलत आचरण करते हैं। प्रभु का उपासक इन दोषों से बचा रहता है, अतः दैवी प्रकोपों का शिकार भी नहीं होता।

जब मानव जाति उस एकमात्र प्रभु का ही उपासन करने वाली होगी, तब सब भेदभावों के समाप्त हो जाने से कल्याण-ही-कल्याण होगा। उस एक उपास्य के अभाव में परस्पर भेद व द्वेष चलता है और परस्पर लड़ते हुए हम मृत्यु के मार्ग पर अग्रसर होते हैं।

6. **इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टो मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन्।**
एष वो द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन्मा तृषत्।।

अथर्व0 2/29/4

उपदेश : प्रभु की कृपा से सब सन्तान प्राप्त करते हैं। इसलिए (क) सन्तानों को हम प्रभु से दिया गया समझें। ऐसा होने पर हम उनके पालन को 'प्रभु का कार्य करना समझेंगे', (ख) उत्तम आचार्यों से उनका शिक्षण हो, (ग) प्राण साधना की प्रवृत्ति इनमें पैदा की जाय और (घ) इनका खान-पान ठीक हो, ऐसा होने पर ये अवश्य दीर्घ-जीवी बनेंगे।

7. **यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।**
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत्पुरुषान्पशूंश्च।।

अथर्व0 3/28/5

उपदेश : जब बुद्धि मन पर शासन करने वाली होती है। अर्थात् जब तक बुद्धि का शासन होता है, तब तक (1) लोगों के हृदय उत्तम होते हैं, (2) उनके कर्म उत्तम होते हैं (3) शरीर निरोग होते हैं, (4) पुरुषों के प्रति इनका व्यवहार मधुर होता है (5) मांसाहार के प्रति अरूचि के कारण ये पशुओं का संहार नहीं करते। इस प्रकार यमिनी बुद्धि (मन को शासित करने वाली बुद्धि) घर को स्वर्ग बना देती है।

8. **ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।**
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः।।

अथर्व0 4/1/1

उपदेश : वेदज्ञान सृष्टि के आरम्भ में प्रभु के द्वारा दिया जाता है। यह ज्ञान अति विस्तृत है- 'प्रकृति, जीव व परमात्मा-तीनों का ही प्रकाश करता है। इसका प्रकाश उसी के जीवन में होता है जो

मर्यादित जीवन वाला होता है, उत्तम रूचि वाला होता है। क्रियाशील ज्ञानी उपासक सब लोक-लोकान्तरों में प्रभु की महिमा को देखता है। प्रभु को ही कार्यकारणात्मक जगत् की योनि जानता है।

9. **वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि।**
स नो हिरण्यजाः शङ्खः कृशनः पात्वंहसः।।

अथर्व0 4/10/1

उपदेश : वायु, अन्तरिक्ष, विद्युत व सूर्यादि ज्योतियों में प्रभु की महिमा का प्रकाश हो रहा है। ये प्रभु हमारे लिए ज्ञान का प्रादुर्भाव करते हैं, इन्द्रियों को शान्त करते हैं, काम-क्रोध आदि शत्रुओं को क्षीण करते हैं और हमें पापों से बचाते हैं।

10. **शङ्खेनामीवाममतिं शंखेनोत सदान्वाः।**
शङ्खे नो विश्वभेषजः कृशनः पात्वंहसः।।

अथर्व0 4/10/3

उपदेश : अजितेन्द्रियता में ही खान-पान का संयम न रहने से रोग पनपते हैं। प्रभु की उपासना हमारे अज्ञान को दूर करती है, हमें रोगों से बचाती है, अलक्ष्मी का विनाश करती है।

11. **दिवि जातः समुद्रजः सिन्धुतस्पर्याभृतः।**
स नो हिरण्यजाः शङ्ख आयुष्प्रतरणो मणिः।।

अथर्व0 4/10/4

उपदेश : द्युलोक, समुद्र, नदियों में सर्वत्र प्रभु की महिमा का प्रकाश है। प्रभु ज्ञान देकर हमें शान्त इन्द्रियों वाला बनाते हैं और इस प्रकार दीर्घ जीवन देकर हृदयस्थ रूपेण सदा धर्म की प्रेरणा देते रहते हैं।

12. **देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्स्व१न्तः।**
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु।। अथर्व0 4/10/7

उपदेश : प्रभु ही हमारे जीवनों को निर्मल बनाकर हमें देवत्व प्राप्त कराते हैं। प्रभु हम सबकी आत्मा हैं। वे हम सबके अन्दर विचरण करते हैं। प्रभु से रक्षित होकर ही हम पवित्र व दीर्घजीवन प्राप्त करते हैं।

13. **अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयां छक्रो वि मिमीते अध्वनः।**
भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि।।

अथर्व0 4/11/2

उपदेश : प्रभु सभी प्राणियों का ध्यान करते हैं। प्रभु ने कर्मानुसार जीवों के तीन भाग किये हैं जिनसे यह संसार चलता है।

(क) देवयान : निष्काम कर्म वाले देवयान मार्ग से जाते हैं।

(ख) पितृयान : सकाम कर्म वाले पितृयान मार्ग से जाते हैं।

(ग) जायस्व म्रियस्व : शास्त्र विरुद्ध कर्म करने वाले व्यक्ति इस मार्ग से जाते हैं।

सब लोकों का पूरण प्रभु ही करते हैं। सूर्यादि सब देव प्रभु के शासन में चल रहे हैं।

14. **यामन्यामन्नुपयुक्तं वहिष्ठं कर्मन्कर्मत्राभगम्।**
अग्निमीडे रक्षोहणं यज्ञवृंधे घृताहुतं स नो मुञ्चत्वंहसः।।

अथर्व0 4/23/3

उपदेश : प्रभु कृपा से ही हमें सर्वत्र सफलता मिलती है, प्रभु ही हमें लक्ष्य स्थान पर पहुँचाते हैं, ये प्रभु ही हमारे कर्मों को पूर्ण करते हैं, राक्षसी वृत्तियों को नष्ट करके प्रभु ही हममें यज्ञों का वर्धन करते हैं। ज्ञान–दीप्ति से हृदय में द्योतित ये प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

15. **यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे।**
यस्मै शुक्रः पर्वते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः।।

अथर्व0 4/24/4

उपदेश : प्रभु को वे प्राप्त करते हैं, जो अपने को ज्ञान दीप्त करें, ज्ञानाग्नि में वासनाओं को दग्ध करें, अपने अन्दर शक्ति का सेचन करें व यज्ञशील हों। स्वाध्याय द्वारा वीर्य-शक्ति को शरीर में ही सुरक्षित करते हुए हम प्रभु के प्रिय बनें। प्रभु हमें पापों से मुक्त करें।

16. **अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।**
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।

अथर्व0 4/30/3

उपदेश : प्रभु सृष्टि के आरम्भ में अग्नि आदि देवों के हृदय में वेद ज्ञान का प्रकाश कर देते हैं। उनसे यह ज्ञान मनुष्यों को प्राप्त होता है। जो प्रभु के प्रिय बनते हैं और जिन्हें प्रभु चाहता है, उनको प्रभु तेजस्वी बनाते हैं, ज्ञानी बनाते हैं,तत्त्वद्रष्टा व गतिशील बनाते हैं, उत्तम मेधा वाले बनाते हैं।

17. **अहमेव वातइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।**
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव।।

अथर्व0 4/30/8

उपदेश : जिस प्रकार वायु निरन्तर चल रही है, इसी प्रकार प्रभु की क्रिया भी स्वाभाविक है। वे अपनी इस क्रिया से ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं। इस निर्माण कार्य में उन्हें किसी दूसरे की सहायता अपेक्षित नहीं होती। वे प्रभु इस द्युलोक व पृथिवी से भी परे हैं। ये द्युलोक और पृथिवीलोक प्रभु को अपने में नहीं समा पाते। प्रभु की महिमा इस ब्रह्माण्ड के अन्दर ही दीखती है, ब्रह्माण्ड से परे तो प्रभु का अचिन्त्य, निर्विकार, निराकार रूप ही है।

18. **सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामिदेकामभ्यं हुरो गात्।**
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे पथां विसर्गे धरूणोषु तस्थौ।।

अथर्व0 5/1/6

उपदेश : ज्ञानी पुरुषों ने सात मर्यादाएँ बना दी हैं। इन्हें तोड़ना पाप है। दूसरे शब्दों में निम्न सात बातें छोड़ने योग्य हैं - (1) चोरी करना (2) बड़ों का निरादर करना (3) ब्रह्महत्या=ज्ञान का त्याग (4) भ्रूणहत्या= गर्भपात (5) दुष्कृत कर्म को बार-बार करना (6) सुरापान= मदिरा सेवन और (7) पाप करके झूठ बोलना।

प्राण साधना द्वारा मन को वशीभूत करने वाला व्यक्ति प्रभु का स्मरण करता है और पापवृत्तियों को छोड़कर धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त होता है।

19. **अर्धमर्धेन पयसा पृणक्ष्यर्धेन शुष्म वर्धसे अमुर।**
अवि वृधाम शग्मियं सखायं वरुणं पुत्रमादित्या इषिरम्।
कविशस्तान्यस्मै वपूंष्यवोचाम रोदसी सत्यवाचा।।
अथर्व0 5/1/9

उपदेश : प्रभु सर्वशक्तिमान व आनन्दमय हैं, हमारे सब कष्टों व पापों का निवारण करने वाले हैं, हमारे सच्चे सखा हैं, हमारे जीवनों को पवित्र करने वाले तथा हमारा रक्षण करने वाले हैं। वे ही प्रकृति में गति पैदा करके इस अद्‌भुत ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं।

हम इस बह्माण्ड में होने वाले आश्चर्यों में प्रभु की महिमा को देखें और उस प्रभु का ही गुणगान करें। प्रभु जैसा ही बनने का प्रयत्न करें।

20. **एकं रजस एना परो अन्यदस्त्येना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक्।**
तत्ते विद्वान्वरुण प्र ब्रवीम्यधोवचसः पणयो भवन्तु
नीचैर्दासा उप सर्पन्तु भूमिम्।। अथर्व0 5/11/6

उपदेश : प्रकृति से भी परे उस सूक्ष्म प्रभु को हम अपने अन्दर देखने के लिए यत्नशील हों, उस प्रभु को जिसकी महिमा कण-कण में दिखाई देती है। उस प्रभु को देखते हुए हम वणिक्वृत्ति (व्यापारिक

वृत्ति) से ऊपर उठें, केवल धन कमाने में न लगे रहें और विनाश की वृत्ति वाले तो कभी भी न हों।

21. **यदन्तरिक्षं पृथिवीमुत द्यां यन्मातरं पितर वा जिहिंसिम।**
अयं तस्माद्गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम्।।

अथर्व0 6/120/1

उपदेश : यह अग्निहोत्र (यज्ञ हवन) वायु मण्डल की शुद्धि के द्वारा, रोगकृमियों के विनाश के द्वारा तथा सौमनस्य (द्वेषहीनता) प्राप्त कराने के द्वारा हमारे शरीर, मन व मस्तिष्क को उत्तम बनाता है और हमें उत्तमवृत्ति का बनाकर माता-पिता का आदर करने वाला बनाता है।

22. **यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोग तन्व स्वायाः।**
अश्लोणा अङ्गैरह्लुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्।।

अथर्व0 6/120/3

उपदेश : स्वर्गतुल्य गृह वह है जहाँ (क) सबके हृदय पवित्र हैं, (ख) सब यज्ञादि उत्तम कर्मों को करने वाले हैं, (ग) सबके शरीर निरोग हैं, (घ) अंग अविकृत हैं, (ङ) स्वभाव, सरल व अकुटिल है, (च) माता-पिता का आदर है और (छ) सन्तानों का शिक्षण-दीक्षण ठीक है।

23. **मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त।**
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः।।

अथर्व0 7/5/5

उपदेश : कुटिलता मृत्यु का एक मार्ग है और सरलता प्रभु-प्राप्ति का मार्ग है। हम सरल बनकर प्राणायाम व स्वाध्याय द्वारा प्रभु को जानें, मन में-हृदय में प्रभु का दर्शन करें। अन्य लोगों को भी प्रभु-प्राप्ति के मार्ग का उपदेश करें।

24. ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि।
हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात्स्वः।।

अथर्व० 7/14/2

उपदेश : प्रभु की ज्योति से हमारा विश्व द्योतित (प्रकाशित) होता है। प्रभु की अनुज्ञा (अनुमति) में ही सूर्य प्रकाश का निर्माण करता है। यह सूर्य किरण रूप हाथों में सब प्राणदायी तत्त्वों को लिए हम सबका हित करने में प्रवृत्त हैं।

25. सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः।।

अथर्व० 7/14/3

उपदेश : प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु के कुछ मानसपुत्र होते हैं (यदभावा मानसा जात:) इन्हें प्रभु ही शरीर प्राप्त कराते हैं और सन्तानों को जन्म देने की शक्ति भी प्राप्त कराते हैं (एषां लोक इमा: प्रजा:)। वर्तमान में भी ये प्रभु हमें सदा वरणीय वस्तुओं व भरण के साधन भूत बहुत पशुओं को प्राप्त कराएँ।

26. समेत विश्वे वचसा पतिं दिव एको विभूरतिथिर्जनानाम्।
स पूर्व्यो नूतनमाविवासत्तं वर्तनिरनु वावृत एकमित्पुरु।।

अथर्व० 7/21/1

उपदेश : सब मिलकर प्रभु का उपासन करो। प्रभु अद्वितीय हैं, सबके स्वामी हैं, लोगों को सतत प्राप्त होने वाले हैं। वे प्रभु पालन व पूर्ण करने वाले होते हुए सम्पूर्ण संसार में व्याप्त हैं। सभी मार्ग अन्तत: प्रभु की ओर ले जाने वाले हैं। विलास के मार्ग में भी कष्ट का अनुभव प्राप्त कराके हमारे जीवन की दिशा को बदल देते हैं और हमें प्रभु की ओर ले चलते हैं।

27. **विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्या णि यः पार्थिवानि विममे रजांसि।**
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थ विचक्रमाणस्त्रे धोरुगायः।।
अथर्व0 7/26/1

उपदेश : प्रभु के ही सब वीरतापूर्ण कर्म स्तुति के योग्य हैं। प्रभु ही सब अग्नि, विद्युत, सूर्य रूप ज्योतियों को निर्मित करते हैं। स्वर्ग को भी वे ही थामने वाले हैं। पृथ्वी अंतरिक्ष व द्युलोक में गति करते हुए वे प्रभु गायन के योग्य हैं।

28. **विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।**
इन्द्रस्य युज्यः सखा।।अथर्व0 7/26/6

उपदेश : प्रभु स्तवन करते हुए हम प्रभु के अनुसार कर्मों को करने का प्रयत्न करें। वे इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय करते हैं। सब गतियां के स्रोत होते हुए भी वे इन लोकों को धारण कर रहे हैं।

29. **अमुत्रभूयादधि यद्यमस्य बृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः।**
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः।।
अथर्व0 7/53/1

उपदेश : जब हम (क) परलोक की बातें न करके इस लोक को सुंदर बनाने में लगते हैं? (ख) जब हम नियमपूर्वक सूर्य चंद्रमा की भाँति व्यवस्थित जीवन बिताते हैं? (ग) जब हम स्वाध्यायशील बनते हैं, तब प्राणापान हमें स्वस्थ बनाकर जीवी बनाते हैं। हम से मृत्यु को दूर करते हैं।

30. **यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद्याचमानस्य चरतो जनाँ अनु।**
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद् घृतेन।।
अथर्व0 7/57/1

उपदेश : ज्ञानी पुरुष जब ज्ञान का प्रसार करते हैं, तब विरोधी लोग अपशब्द भी बोलते हैं, प्रहार भी करते हैं। ज्ञानी को चाहिए

कि इन्हें सहन करता हुआ अपने कर्त्तव्य-कर्म में लगा रहे।

31. प्रतीचीनफलो हि त्वमपामार्ग रुरोहिथ।
सर्वान्मच्छपथाँ अधि वरीयो यावया इतः।।

अथर्व0 7/65/1

उपदेश : प्रभु स्मरण से सब दुष्कृत, पाप व अशुभ-वृत्तियाँ दूर हो जाती है। मैले-कुचैले-तमोगुणी पुरुषों के साथ अथवा फूट डालने वाले, चुगली करने वाले तमोगुणी पुरुषों के संग में आ जाने वाले दोषों को हम प्रभु की उपासना के द्वारा दूर कर सकते हैं।

32. इदं ते हव्यं घृतवत्सरस्वतीदं पितृणां हविरास्यं१ यत्।
इमानि त उदिता शन्तमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम।।

अथर्व0 7/68/2

उपदेश : यदि एक व्यक्ति वेदवाणी के अनुसार कार्य करता है तो शांति प्राप्त करता है। उसका जीवन निर्मल व दीप्त बनता है। वेदवाणी हमें रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त करती है और सब बुराइयों को हमसे दूर करती है।

33. स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना रिहन्ति।।

अथर्व0 7/73/3

उपदेश : स्वार्थत्याग होने पर ही यज्ञ संभव होता है। यह जीवन को पवित्र बनाता है, तभी सोम का रक्षक संभव होता है और दिव्य गुणों का वर्धन होता है। इस यज्ञ को वेदमन्त्रोंच्चारणपूर्वक प्रीति से सेवन करते हुए लोग अमृत-निरोग होते हैं।

34. यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ। स्वां योनिं गच्छ स्वाहा।।

अथर्व0 7/97/5

एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः। सुवीर्यः स्वाहा।।

अथर्व0 7/97/6

उपदेश : यज्ञ द्वारा प्रभुपूजन होता है। यह यज्ञ यज्ञमान को उत्तम फल प्राप्त कराता है। यजमान इसे प्रभु शक्ति से होता हुआ समझे। इन यज्ञों को सूक्त वचनों के साथ करता हुआ वह उत्तम वीर्य वाला हो। यज्ञ के इन लाभों को समझता हुआ यजमान यज्ञशील बने।

35. **उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्बीशमवमुञ्चमानः।**
मा च्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य सन्दृशः।।

अथर्व0 8/1/4

उपदेश : दीर्घ जीवन के लिए आवश्यक है कि हम (क) वेद ज्ञान प्राप्त करें, (ख) नियम से अग्निहोत्र (यज्ञ) करें, (ग) सूर्य-किरणों के संपर्क में जीवन-यापन करें।

36. **मैतं पन्थामनु गा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।**
तम एतपुरुष मा प्र पत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्।।

अथर्व0 8/1/10

उपदेश : गए हुओं का स्मरण करते रहने से रहने का मार्ग भयंकर है। मृतों का ही शोक करते रहना ठीक नहीं। यह अन्धकार है, अज्ञानता है। यह तो हमें समय से पूर्व ही मृत्यु-मुख में ले जाएगा। कल्याण इसी में है कि मनुष्य शोक को छोड़कर जीवितों के सम्मुख प्राप्त हो और उनके प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे।

37. **अस्मै मृत्यो अधि ब्रूहीमं दयस्वोदितो३ऽयमेतु।**
अरिष्टं सर्वाङः सुश्रुज्जरसा शतहायन आत्मना भुजमश्नुताम्।।

अथर्व0 8/2/8

मृत्यु के स्मरण से हम सन्मार्ग पर चलें, रोगादि से आक्रान्त न हों, पूरे सौ वर्ष तक चलते हुए भी हम पराश्रित न हों, दूसरों के सहारे जीने वाले न हों।

38. अग्नेष्टे प्राणममृतादायुष्मतो वन्वे जातवेदसः।
यथा न रिष्या अमृतः सजूरसस्तत्ते कृणोमि तदु ते समृध्यताम्।।
अथर्व0 8/2/13

हम प्राणसाधनों द्वारा नीरोग दीर्घजीवन प्राप्त करें। रोगादि से हिंसित न होते हुए 'अमृत' हों, असमय में ही मृत्यु का शिकार न हो जायें। प्रभु की उपासना में चलते हुए हम समृद्ध जीवन वाले बनें।

39. वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिक्ष्वे।।
अथर्व. 8/3/24

प्रभु का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। प्रभु अपनी महिमा से सब लोकों को प्रकाशित करते हैं, हमारी छल-कपट की वृत्तियों को विनिष्ट करते हैं। ज्ञान और कर्म के द्वारा प्रभु काम-क्रोध को दूर भगा देते हैं।

40. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्।।
अथर्व0 8/4/12

सत्य और असत्य वचन परस्पर स्पर्धा वाले होते हैं, इनमें परस्पर विरोध है। इनके विरोध को समझदार तुरन्त जान लेता है। वह सत्य और असत्य के विरोध को देखता हुआ सत्य को ग्रहण करता है और असत्य को छोड़ता है। प्रभु सत्यवादी का रक्षण करते हैं और असत्यवक्ता को विनिष्ट करते हैं।

41. अनेनेन्द्रो मणिना वृत्रमहन्ननेनासुरान्पराभावयन्मनीषी।
अनेनाजयद् द्यावापृथिवी उभे इमे अनेनाजयत्प्रदिशश्चतस्त्रः।।
अथर्व0 8/5/3

जितेन्द्रिय पुरुष, वीर्य रक्षण द्वारा ज्ञानाग्नि को दीप्त करके उससे काम का विध्वंस करता है। सब आसुर वृत्तियों को सुदूर पराभूत करने वाला होता है। मस्तिष्क को ज्ञान दीप्त व शरीर को सशक्त बनाता है और सब दिशाओं में शोभा वाला होता है।

42. **अन्तर्दधे द्यावापृथिवी उताहरुत सूर्यम्।**
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु।।

अथर्व0 8/5/6

सुरक्षित वीर्य 'मस्तिष्क व शरीर' के स्वास्थ्य का साधन बनता है। यह शरीर को रोगों से नष्ट नहीं होने देता तथा मस्तिष्क को ज्ञान दीप्त बनाता है। वीर्यरक्षक, पुरोहित, देव रोगरूप शत्रुओं को दूर भगा देते हैं।

43. **वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माऽहर्वर्म सूर्यः।**
वर्म म इन्द्रश्चाग्निश्च वर्म धाता दधातु मे।।

अथर्व0 8/5/18

वीर्य को अपने अन्दर वह धारण कर पाता है जो अपने मस्तिष्क व शरीर को दीप्त व दृढ़ बनाने का निश्चय करता है, जो दिन में एक-एक क्षण को यज्ञादि उत्तम कर्मों में बिताता है, अपने अन्दर ज्ञान सूर्य को उदित करने के लिए यज्ञशील होता है।यह जितेन्द्रिय, आगे बढ़ने की वृत्ति वाला, धारणात्मक कर्मों में प्रवृत्त व्यक्ति ही इस वीर्य को अपना कवच बना पाता है।

44. **घर्मः समिद्धो अग्निनायं होमः सहस्त्रहः।**
भवश्च पृश्निबाहुश्च शर्व सेनाममूं हतम्।।

अथर्व0 8/8/17

घर में अग्निहोत्र (यज्ञ) होने से रोग कृमियों का विनाश होता है तथा पिता, माता व आचार्य वासनात्मक वृत्तियों का विनाश

करते हैं। उचित शिक्षण के द्वारा वे हममें वासनाओं को नहीं पनपने देते।

45. **यानि त्रीणि बृहन्ति येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम!।**
ब्रह्मैनद्विद्यात्तपसा विपश्चिद्यस्मिन्नेक युज्यते यस्मिन्नेकम्।।

अथर्व0 8/9/3

सत्त्व, रज व तम–ये प्रकृति के तीन गुण हैं। इन तीनों गुणों से बनी प्रकृति को धारण करने वाला चतुर्थ प्रभु वेदवाणी को जीवों के साथ जोड़ता है। वे प्रभु ही संसार का निर्माण करके जीवों के लिए ज्ञान देते हैं। ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि तप के द्वारा इस ब्रह्म को जाने। यह ब्रह्म एक ही है।

46. **यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम्।**
यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति सा विराड्षयः परमे व्यो मन्।।

अथर्व0 8/9/8

प्रभु ने जीव के लिए वेदवाणी द्वारा ही यज्ञों का प्रतिपादन किया है। अत: वेदवाणी वह है जिसके प्रच्युत (हमसे पृथक्) होने पर यज्ञों का भी विलोप हो जाता है। यज्ञों की प्रेरणा से ही हम प्रभु को प्राप्त करते हैं। वेदवाणी का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रभु ही है।

47. **को विराजो मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून्क उ कल्पमस्याः।**
क्रमान्को अस्याः कतिधा विदुग्धान्को अस्या धाम कतिधा व्यु ष्टीः।।

अथर्व0 8/9/10

प्रभु हमारे पिता हैं, वेदवाणी हमारी माता है। वेदवाणी का प्रकाश हमें पवित्र कर्त्तव्यकर्मों का निर्देश करता है। यह हमें शक्ति प्रदान करती है और हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करती है। लेकिन कोई विरला ही इस वेदवाणी के तेज को जानता है कि कितने प्रकार से इसके द्वारा अन्धकारों का विनाश होता है।

48. **छन्दः पक्षे उषसा पेपिशाने समानं योनिमनु सं चरेते।**
सूर्यपत्नी सं चरतः प्रजानती केतमती अजरे भूरिरेतसा।।

अथर्व0 8/9/12

उपदेश : वेदवाणी हमारे अज्ञान को दूर करती है। वेदवाणी को अपनाने वालों के जीवन दग्ध दोष व सुन्दर बनते हैं। ये प्रभु की ओर गति वाले होते हैं। अपने अन्दर ज्ञानसूर्य का उदय करते हुए ये ज्ञानी, बुद्धिमान, अजीर्ण व शक्तिशाली होते हैं।

49. **षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य षडु सामानि षडहं वहन्ति।**
षड्योगं सीरमनु सामसाम षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः।।

अथर्व0 8/9/16

उपदेश : प्रभु ने पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व बुद्धि को जन्म दिया जिससे सब सत्यज्ञान प्राप्त कर सकें। प्रभु ने ही पाँच कर्मेन्द्रियों तथा मन को प्राप्त कराया जिससे हम कर्मों को पूर्ण कर सकें। ये सब हमें उस प्रभु को प्राप्त कराने वाले होते हैं। जब ये विषयों में नहीं भटकते, तभी शान्ति होती है। उस समय ये द्यावापृथ्वी तथा अन्य लोक-लोकान्तर प्रभु की महिमा को ही दिखाते हैं।

50. **सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त।**
सप्ताज्यानि परि भूतमायन्ताः सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम्।।

अथर्व0 8/9/18

उपदेश : प्रभु ने दो कान, दो नासिका छिद्र, दो आँखें व मुख रूप-ये सात ऋषि हमारे शरीर में रखे हैं। ये सात ऋषि हैं। ये ज्ञान का ग्रहण करते हुए जीवन को अलंकृत कर देते हैं। इनके द्वारा जीवन दीप्त, मधुर व नियमित गति वाला बनता है। परन्तु, जब हम विषयों से आकृष्ट होकर विषयों की ओर चले जाते हैं, तब ये सात गृध्र (गिद्ध-एक पक्षी) बन जाते हैं और जीवन को मलिन कर देते हैं।

51. **केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वश पीयूषं प्रथमं दुहाना।**
अथातर्पयच्चतुरश्चतुर्धा देवान्मनुष्याँ३ असुरानुत ऋषीन्।।

अथर्व0 8/9/24

उपदेश : प्रभु के द्वारा सृष्टि के आरम्भ में जिसका ज्ञान दिया गया है, वह वेदवाणी हमें कमनीय, व्यापक, अमृतमय ज्ञान प्राप्त कराती है। यह हमें देव, मनुष्य, असुर (प्राणसाधक) व ऋषि बनाती हुई सफल जीवन वाला करती है।

52. **दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात्समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे।**
तां चायित्वाऽमृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः।।

अथर्व0 9/1/1

उपदेश : यह वेदवाणी सब लोकों और लोकस्थ सब पदार्थों का ज्ञान देकर हमें नीरोगता व अमरता प्राप्त कराती है। यह हृदयों में उल्लास पैदा करती है।

53. **नमस्तस्मै नमो दात्रे शालापतये च कृण्मः।**
नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः।। अथर्व0 9/3/12

उपदेश : गृहस्थ को चाहिए कि घर में सन्तानों को उत्तम बनाने का प्रयत्न करे, दानशील हो, गृहरक्षण का ध्यान करे तथा घर में अग्निहोत्र के नियम को छिन्न न होने दे।

54. **अग्निमन्तश्छादयसि पुरुषान्पशुभिः सह।**
विजावति प्रजावति वि ते पाशाश्चृतामसि।।

अथर्व0 9/3/14

उपदेश : जिस घर में नियमपूर्वक अग्निहोत्र होता है, वहाँ सब पुरुष स्वस्थ रहते हैं। प्रशस्त प्रजाओं वाले इस घर के बन्धनों को हम सुदृढ़ करते हैं।

55. पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान्वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहुत जातवेदाः।।

अथर्व0 9/4/3

उपदेश : प्रभु ने संसार को सुखमय बनाया है। आसक्ति, अयोग व व्यवहार-दोष से हम इसे दु:खमय बना लेते हैं। ज्ञानी व प्रगतिशील बनकर हम देवयान मार्गों (निष्काम कर्म वाले) से चलें तो प्रभु को प्राप्त करेंगे और परमैश्वर्य के भागी होंगे।

56. आज्य बिभति घृतमस्य रेतः साहस्त्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान्देवाः शिव ऐतु दत्तः।।

अथर्व0 9/4/7

उपदेश : सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान प्रभु का ज्ञान हमारे जीवनों को कान्त बनाता है। प्रभु से दी गई शक्ति हमारा बहुत प्रकार से रक्षण करती है। वे प्रभु ही उपास्य हैं। परमैश्वर्य वाले वे प्रभु हमें प्राप्त हों। वे प्रभु सब आवश्यक वस्तुओं को देने वाले हैं और हमारा कल्याण करने वाले हैं।

57. एतद्वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिंल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः।।

अथर्व0 9/5/11

उपदेश : प्रकृति व जीव के ज्ञान के पश्चात् प्रभु का ज्ञान 'तृतीय ज्योति' है। इसे प्राप्त करने वाला अपने को प्रभु के प्रति दे डालता है और प्रभु उसे ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहने की प्रवृत्ति वाला बनाते हैं। प्रभु के प्रति अपने को दे डालने वाला उपासक अज्ञान-अन्धकार को अपने से दूर फेंकता है अर्थात् उसका सब अज्ञान-अन्धकार विलीन हो जाता है।

58. अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चौदनो निर्ऋतिं बाधमानः।
तेन लोकान्त्सूर्य वतो जयेम।। अथर्व0 9/5/18

उपदेश : हम इस जीवन में पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान-प्राप्ति में प्रवृत्त हों। इस प्रकार अपने को ज्ञानाग्नि में परिपक्व करें। गतिशीलता द्वारा बुराइयों को परे फेंकने वाले बनें। पतन के मार्ग को अपने से दूर रखें। इससे हमारा जीवन स्वर्गोपम बनेगा और हम ब्रह्मलोक को प्राप्त करने वाले बनेंगे।

59. आत्मनं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम्।
जाया जनित्रीं मातरं ये प्रियास्तानुप ह्वये।।

अथर्व0 9/5/30

उपदेश : घरों में जब कोई कार्य विशेष उपस्थित हो, तब उन अवसरों पर सर्वप्रथम प्रभु का स्मरण करना चाहिए, तदनन्तर पिता, दादा, माता, पत्नी व पुत्र-पौत्रों को भी बुलाना चाहिए। यज्ञ के समय घर के सब व्यक्ति उपस्थित हों। उस समय पत्नी पाकशाला में कुछ पका न रही हो।

60. तेषामासन्नानामतिथिरात्मञ्जुहोति।।अथर्व0 9/6/2/4
स्त्रुचा हस्तेन प्राणे यूपे स्त्रक्कारेण वषटकारेण। एते वै प्रियाश्चाप्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गं लोकं गमयन्ति यदतिथयः।।

अथर्व0 9/6/2/5

उपदेश : अतिथि को प्रेमपूर्वक भोजन कराने से गृहस्थ अपने घरों को स्वर्ग-तुल्य बना लेते हैं, वे घर स्वर्ग से बन जाते हैं।

61. प्राजापत्यो वा एतस्य यज्ञो विततो य उपहरति।
प्रजापतेर्वा एष विक्रमाननुविक्रमते च उपहरति।।

अथर्व0 9/6/2/12

उपदेश : आतिथ्य करने वालों का यज्ञ सदा चलता है। इस

अतिथियज्ञ से सन्तानों पर सदा उत्तम प्रभाव पड़ता है और यह स्वयं प्रभु के महान कार्यों का अनुसरण करता हुआ उत्तम कार्यों को करने वाला बनता है।

62. **पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा।**
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न च्छिद्यते सनाभिः।।

अथर्व0 9/9/12

उपदेश : यह भूमण्डल का चक्र अपनी कीली पर निरन्तर घूम रहा है। यह पाँच भागों में बँटा हुआ है। अनन्त बोझ से लदा हुआ इस पृथिवी का अक्ष सन्तप्त (दु:खी, उदास) नहीं होता। समान नाभि वाला होता हुआ भी यह चक्र कभी छिन्न नहीं होता। 'पृथिवी च दृढ़ा' यह नितान्त सत्य ही है।

63. **साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति।**
तेषामिष्टानि विहितानि धामश स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः।।

अथर्व0 9/9/16

उपदेश : शरीर में आत्मा के साथ प्रवेश करने वाली इन्द्रियाँ मन व बुद्धि हैं। बुद्धि से नियंत्रित इन्द्रियाँ व मन हमें ज्ञान व दिव्य गुणों से भर देते हैं। यदि हम प्राकृतिक पदार्थों का प्रयोग इनकी शक्ति को बढ़ाने के दृष्टिकोण से करते हैं तो ठीक है, परन्तु स्वाद व सौन्दर्य की ओर उन्मुख हुई तो ये विकृत होकर जीव को विचलित करने वाली होती हैं।

64. **अवः परेण पर एनाऽवरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।**
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अस्मिन्।।

अथर्व0 9/9/17

उपदेश : वेदवाणी हमें (1) ज्ञान द्वारा उच्च स्थान पर पहुँचाती है। (2) यह प्रकृति विद्या से जाने गये पदार्थों से हमें शक्तिसम्पन्न

बनाती हुई आत्मविद्या द्वारा मोक्ष प्राप्त कराती है। (3) देवों का ज्ञान देती हुई महादेव की महिमा का दर्शन कराती है। मोक्ष को प्राप्त करने योग्य न होने पर भी यह हमें उत्कृष्ट कुलों में जन्म देती है।

65. **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।**
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति।।

अथर्व0 9/9/20

उपदेश : जीवात्मा व परमात्मा दो सुपर्ण हैं–उत्तमता से पालन व पूरण करने वाले हैं। परमात्मा का पालनात्मक कर्म सर्वत्र प्रत्यक्ष है। जीव भी सद्गृहस्थ बनकर एक परिवार का पालन करता है। ये दोनों एक साथ मिलकर हृदयान्तरिक्ष में रहने वाले हैं, सखा हैं–दोनों का इकट्ठा ही दर्शन होता है।

ये दोनों एक ही संसाररूप वृक्ष का आलिंगन करते हैं, दोनों इस संसार में रहते हैं। इन दोनों सुपर्णों में एक जीव संसार–वृक्ष के फल को मजा लेकर खाता है। दूसरा प्रभु फलों का किसी प्रकार से भोग न करता हुआ चारों ओर, इन फलों को खाते हुए जीवों को देखता है। जीव शरीर रक्षण के लिए खाता है तो ठीक है स्वाद के लिए खाने लगता है तो प्रभु से दण्डनीय होता है।

66. **यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत।**
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः।।

अथर्व0 9/10/1

उपदेश : मोक्ष को वे ही प्राप्त करते हैं जोकि यह समझ लेते हैं कि (1) यज्ञ में ही पुरुष का जीवन निहित है, (2) ज्ञान, कर्म व उपासना का समन्वय ही त्रिविध दुःखों को रोकता है तथा (3) वे गतिशील मुनियों से गम्य पशु ब्रह्माण्ड के कण–कण में विद्यमान है।

**67. जगता सिन्धुं दिव्य स्कभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्य पश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्त्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा।।**

अथर्व0 9/10/3

उपदेश : मनुष्य प्रभु की उपासना द्वारा सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान के द्वारा इस भूमण्डल को वह स्वर्ग बना देता है। इस ज्ञान-यज्ञ में 'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्युलोक-स्थ पदार्थों के ज्ञान की आहुति देता हुआ वह बल व महिमा के दृष्टिकोण से सभी को लाँघ जाता है।

**68. अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान्विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत।।**

अथर्व0 9/10/7

उपदेश : वेद को समझने के लिए (1) मनुष्य अन्यत्र श्रम न करके श्रद्धापूर्वक वेदाध्ययन में ही लगे। अर्थ समझ में न भी आये तो भी उसका पाठ करे। (2) धीरे-धीरे यह वेदवाणी उसके अज्ञान को नष्ट करती हुई उसे ज्ञानी बनायेगी। (3) कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान के द्वारा उसके आचरण व व्यवहार के स्तर को ऊँचा करेगी और (4) अन्त में यह वेदवाणी उसके सामने स्पष्ट हो जायेगी। वह इसका ऋषि-दृष्टा बनेगा।

**69. य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिरा विवेश।।**

अथर्व0 9/10/10

उपदेश : जन्म-मरण का चक्र रहस्यमय है। गर्भस्थ बालक अपने पिछले जन्मों व कष्टों का स्मरण करता हुआ निश्चय करता है कि इस बार जन्म लेने पर वह प्रभु-स्मरण में प्रवृत्त होगा और इस जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने का प्रयत्न करेगा।

70. **अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमृत्यो मर्त्येना सयोनिः।**
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्।।

अथर्व0 9/10/16

उपदेश : अपने अर्जित पाप-पुण्यों के अनुसार जीव निचली व उपरली योनियों में जन्म लिया करता है। ये शरीर और आत्मा सदा से मेल वाले हैं, भिन्न-भिन्न लोकों में गति वाले हैं। जीव शरीर को छोड़ता है तो आत्मा तो नये शरीर में प्रवेश पाता है और पुराना शरीर भस्मान्त होकर पंच तत्त्वों में मिल जाता है। 'हम शरीर को ही जानते हैं; अपने को नहीं जानते' यह कितना बड़ा आश्चर्य है।

71. **ऋचः पदं मात्रया कल्पयन्तोऽर्धर्चेनं चाक्लृपुर्विश्वमेजत्।**
त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वि तष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशशचतस्त्रः।।

अथर्व0 9/10/19

उपदेश : ज्ञानी लोग संसार की रचना में प्रभु की बुद्धिपूर्वक कृति व महिमा को देखते हैं। इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय करने वाले प्रभु ही नाना रूपों में इस ब्रह्माण्ड को धारण किये हुए हैं। उस प्रभु के सामर्थ्य से चारों दिशाओं में स्थित प्राणी प्राण धारण कर रहे हैं। प्रभु ही सर्वाधार हैं।

72. **गौरिन्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।**
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्त्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति।।

अथर्व0 9/10/21

उपदेश : वेदवाणी उस अद्वितीय प्रभु का वर्णन करती है। कभी परमात्मा और जीवात्मा-दोनों का साथ-साथ ज्ञान देती है, ताकि उनकी तुलना ठीक रूप से हो जाये और जीव अपने आदर्श को समझ ले। यह वेदवाणी जीव के पुरुषार्थभूत 'धर्मार्थ-काम-

मोक्ष'-चारों पुरुषार्थों का ज्ञान देती है। शरीरस्थ आठों चक्रों का ज्ञान देती हुई, इन चक्रों के विकास के लिए योग के 'यम-नियम' आदि आठों अङ्गों का प्रतिपादन करती है। अनेक रूपों में यह प्रभु का वर्णन करती है। ब्रह्माण्ड का ज्ञान देती है। इस वेदवाणी से ही ज्ञान के समुद्रों का प्रवाह चलता है।

73. **कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।**
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवीं व्यू दुः।।

अथर्व0 9/10/22

उपदेश : मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि हम ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को ज्ञान व कर्म के बाड़े में प्रत्याहृत (संयम) करें, अपना पालन व पूरण करें, सदा क्रियामय जीवन वाले हों। मोक्ष से लौटने पर हम ज्ञान-प्रसार के कार्य में ही प्रवृत्त हों।

74. **तस्मिन्हिरण्यये कोशे त्रय रे त्रिप्रतिष्ठिते।**
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः।।

अथर्व0 10/2/32

उपदेश : प्रभु का निवास इस मनोमय कोश में है। तम व रज से ऊपर उठकर जब यहाँ सत्त्व की प्रधानता होती है तब उस सदा चैतन्य, पूजनीय सत्ता का यहाँ दर्शन होता है। एक ज्ञानीपुरुष इसे 'ज्ञान, कर्म व उपासना' में प्रतिष्ठित करता है और इसमें प्रभु को देखने का प्रयत्न करता है।

75. **नाम नाम्ना जोहवीति पुरा सूर्योत्पुरोषसः।**
यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत्स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतम्।।

अथर्व0 10/7/31

उपदेश : जब एक साधक ब्राह्ममुहूर्त में प्रभु का स्मरण (नाम-जप)

करता है तब वह बुराइयों को दूर करके प्रभु के साथ मेल वाला होता है। वह निश्चय से स्वराज्य प्राप्त करता है-अपना शासन करने वाला बनता है, इन्द्रियों का दास नहीं होता। यह आत्मशासन-स्वराज्य-सर्वोत्तम वस्तु है।

76. दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति।।

अथर्व0 10/8/15

उपदेश : दूर-से-दूर होता हुआ भी वह प्रभु पालन व पूरण करने वाले ज्ञानी पुरुष के साथ रहता है। ज्ञानी पुरुष हृदय देश में प्रभु का दर्शन करते हैं। अज्ञानियों व निर्बलों से वे प्रभु दूर ही होते हैं। वे महान पूजनीय प्रभु सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। ज्ञानी लोग अर्जित धन का यज्ञों में विनियोग करके यज्ञशेष का ही सेवन करते हैं। इस प्रकार ही तो प्रभु का पूजन होता है।

77. इयं कल्याण्य १ जरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः।।

अथर्व0 10/8/26

उपदेश : शरीर में आत्मा के साथ परमात्मा का भी निवास है। शरीर में ममत्व रखने वाला आत्मा तो 'जन्म-मरण' के चक्र में फँसता है, परन्तु इसमें रहता हुआ भी परमात्मा जन्म-मरण के चक्र से ऊपर है। जिस परमात्मा ने जीव को कर्मफल भोगने हेतु यह शरीर नगरी बनाई है, वह स्तुति के योग्य है। इस शरीर की रचना में अङ्ग-प्रत्यङ्ग की रचना के कौशल में उस प्रभु की महिमा का अनुभव करता हुआ स्तोता उस प्रभु का स्तवन करता है।

78. उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषा ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः।।

अथर्व0 10/8/28

उपदेश : जीव शरीर में प्रविष्ट होकर कभी पिता है तो कभी पुत्र, कभी ज्येष्ठ है तो कभी कनिष्ठ, परन्तु वे अद्वितीय प्रभु सृष्टि के बनने से पहले ही प्रादुर्भूत (उत्पन्न, विद्यमान) हैं और वर्तमान में वे प्रभु ही सबके लोक-लोकान्तरों व प्राणियों में प्रविष्ट होकर रह रहे हैं-अन्दर स्थित हुए सबका नियमन कर रहे हैं।

79. **अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम्।**
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः।।

अथर्व0 10/9/1

उपदेश : वेदवाणी हमें किसी भी अशुभकामना से रोकती है, यह हमारे रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करती है। प्रभु, इसे सृष्टि के आरम्भ में हमारे लिए देते हैं। यह हमारी शक्तियों का विस्तार करती है, सुख प्रदान करती है। काम-क्रोध आदि शत्रुओं को विनिष्ट करती है।

यह वेदवाणी यज्ञशील पुरुष की मार्गदर्शिका है। यज्ञों का प्रतिपादन करती हुई यह वेदवाणी अपने अध्येता को यज्ञों में प्रवृत्त करती है।

80. **स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः।**
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम्।।

अथर्व0 10/9/5

उपदेश : 'स्वाध्याय व प्रवचन' मनुष्यों को सब प्रकार की आसक्तियों से ऊपर उठाकर इन्हें तेजस्वी शरीर, पवित्र हृदय व दीप्त मस्तिष्क वाला बनाता है। अतः हमें जितेन्द्रिय बनकर स्वाध्याय प्रवचन को ही अपना मुख्य कार्य बनाना चाहिये।

81. **यदनूचीन्द्रमैरात्त्व ऋषभो ऽह्वयत्।**
तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धो ऽहरदृशे।।

अथर्व0 10/10/10

उपदेश : प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम वेदज्ञान दिया, अतः इसका स्थान सर्वप्रथम होना ही चाहिए। जो व्यक्ति जीवन में वेदज्ञान को प्रथम स्थान नहीं देता, वह प्रभु का प्रिय नहीं बनता। क्रुद्ध हुए-हुए प्रभु उसके, शक्तियों को आप्यायित करने वाले, ज्ञान को हर लेते हैं।

82. **ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद् ब्रह्मणः ककुदादधि।**
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताऽजायत।।

अथर्व0 10/10/19

उपदेश : ज्ञान के शिखर पर पहुँचने के लिए वेदवाणी के व प्रभु के प्रकाश को पाने के लिए आवश्यक है कि हम शरीर में वीर्य की उर्ध्वगति वाले बनें।

83. **चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः।**
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम्।।

अथर्व0 10/10/29

उपदेश : वेदवाणी मनुष्यों को प्रेरणा देती है (1) कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की कामना करो। (2) वेद मनुष्य को वाचस्पति बनकर नीरोग बनने का उपदेश देता है। (3) वेदवाणी मनुष्य को यज्ञों के लिए निरन्तर प्रेरित करती है और (4) वेद ने पशुओं को मानव जीवन के साथ जोड़ दिया है व उत्तम गौ आदि पशुओं वाला बनने की प्रेरणा देती है।

84. **अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा।**
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह।।

अथर्व0 11/1/1

उपदेश : सन्तान की उत्तमता के लिए आवश्यक है कि -

(1) घर में अग्निहोत्र नियम से हो -यज्ञमय वातावरण हो।

(2) माता अदीन वृत्ति की व दिव्य गुणों को धारण करने वाली हो।

(3) माता ऐश्वर्य वाली होती हुई उत्तम सन्तान की प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मौदन का परिपाक करे अर्थात् घर में सात्त्विक भोजन ही बने।

(4) घर के लोग उपासना द्वारा वासना का विनाश करें–उत्तम कर्मों के करने वाले हों।

85. ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे। अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम्।।

अथर्व0 11/1/18

उपदेश : हमें चाहिए कि हम वेदज्ञान द्वारा जीवन को शुद्ध बनायें। सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखें। वासनाओं का विध्वंस करके यज्ञशील हों। क्रियामय जीवन वाले होकर ज्ञान–प्राप्ति में लगाने वाले हों। यही मार्ग है स्वर्ग प्राप्त करने का।

86. इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात्कामदुघा म एषा। इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्था पितृषु यः स्वर्गः।।

अथर्व0 11/1/28

उपदेश : स्वर्ग का मार्ग यह है कि (क) हम ज्ञान का संचय करें, (ख) नीरोग बनें, (ग) वीर्य रक्षण करने वाले हों, (घ) वानस्पतिक भोजन करें, (ङ) गौ दूध का ही सेवन करें, (च) ज्ञानियों को लोकहित के कार्यों के लिए धन दें और (छ) पालनात्मक प्रवृत्ति वाले बनें।

87. क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः। नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्त्राक्षायामर्त्य।।

अथर्व0 11/2/3

उपदेश : प्रभु सृष्टि के प्रारम्भ में वेदज्ञान देते हैं, प्राणशक्ति प्राप्त कराते हैं, निद्रा व प्रलय में मूढ़ अवस्था में शक्तियाँ प्राप्त कराते हैं। सब दु:खों के द्रावक, अमरधर्मा व सर्वसाक्षी हैं। उन आपके लिए हम नमस्कार करते हैं।

88. प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

अथर्व0 11/4/2

उपदेश : जिस प्रभु के वश में यह पूर्ण ब्रह्माण्ड है, वे प्रभु सदा से हैं, सबके ईश्वर हैं। जो कर्मानुसार विविध योनियों में प्राप्त कराने वाले हैं, जिस प्राणात्मा प्रभु में सम्पूर्ण जगत्-प्रतिष्ठित है - जो सर्वाधार है, उन प्रभु के लिए हम प्रणाम करते हैं।

89. गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम्।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः।।

अथर्व0 11/6/4

उपदेश : हम वेदवाणी का धारण करने वाले, यज्ञादि कर्मों को करने वाले, प्राण-साधना में प्रवृत्त, ज्ञान के स्वामी व वासना रूप शत्रुओं का नियमन करने वाले बनें। यही पाप व कष्ट से बचने का मार्ग है।

90. असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।।

अथर्व0 12/1/2

उपदेश : पृथिवीविशाल है-समझदार व्यक्तियों को यहाँ परस्पर टकराने की आवश्यकता नहीं। पृथिवी के उच्चस्थल, ढलान व समस्थल बहुत हैं।

91. यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम्।
तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे।।

अथर्व0 12/2/7

उपदेश : हम कई बार स्वादवश या मांसभोजन की पौष्टिकता के भ्रमवश मांसभोजन में प्रवृत्त हो जाते हैं। यही 'क्रव्याद अग्नि (मांस भोजन वाली अग्नि) का घर में प्रवेश है। इस क्रव्याद अग्नि के प्रवेश से मानव के स्वभाव में क्रूरता व स्वार्थ का प्राबल्य होता है। तब हम बड़ों के आदर व सेवा को भूल जाते हैं। अतः हमारे घरों में मांसभोजन की प्रवृत्ति न हो। हम शाकभोजी रहते हुए स्वार्थ व क्रूरता से दूर रहें। इस प्रकार हमारे घरों में पितृयज्ञ (बड़ों का आदर) सदा चलता रहे और हृदयों में हम प्रभु का दर्शन करने वाले बनें।

92. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः।
इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्।।

अथर्व0 12/2/8

उपदेश : मांस भोजन से जीवन रोगों व दोषों से परिपूर्ण बनता है। अतः हम दिव्य गुणों के विकास के लिए हव्य (सात्त्विक, वानस्पतिक) पदार्थों का ही प्रयोग करें।

93. सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे।
अव्यामसिक्न्यां मृष्टवा शुद्धा भवत यज्ञियाः।।

अथर्व0 12/2/20

उपदेश : प्रभु का उपासन हमारे मन की मैल को नष्ट करता है। इस उपासना से संसार हमारे लिए सिरदर्द नहीं बना रहता। उस सर्वरक्षक, अजर, अमर प्रभु का चिन्तन हमें शुद्ध व पवित्र बना देता है।

94. उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोऽश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम्।
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि वाजान्।।

अथर्व0 12/2/27

उपदेश : इस संसार-नदी को तैरने के लिए आवश्यक है कि (क) आलस्य को छोड़ा जाय, (ख) मित्रभाव से सबके साथ वर्ता जाय (ग) अशुभ कर्मों को छोड़ने का प्रयत्न किया जाय।

95. यत्कृषते यद्वनुते यच्च वस्त्रेन विन्दते।
सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः।।

अथर्व0 12/2/36

उपदेश : मांसभक्षण की प्रवृत्ति मनुष्य को क्रूर व विलासी बनाकर विनाश की ओर ले जाती है। मांसभक्षण प्रवृत्ति वाले मनुष्य का वह सब नष्ट हो जाता है जो वह कृषि द्वारा प्राप्त करता है, वह पिता की सम्पत्ति में संविभाग द्वारा प्राप्त करता है और जो वह क्रय-विक्रय व्यवहार से प्राप्त करता है।

96. ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः।
ब्रह्मैव विद्वानेष्यो३ यः क्रव्याद निरादधत्।।

अथर्व0 12/2/39

उपदेश : ज्ञानीपुरुष गृहस्थों को उपदेश दें कि मांसभोजन से गठिया आदि रोगों की उत्पत्ति होती है और मनुष्य की असमय में ही मृत्यु हो जाती हे। अतः यह त्याज्य है।

97. पुमान्पुंसोऽधिं तिष्ठ चर्मेहि तत्र ह्वयस्व यतमा प्रिया ते।
यावन्तावग्ने प्रथमं समेयथुस्तद्वां वयो यमराज्ये समानम्।।

अथर्व0 12/3/1

उपदेश : घर को स्वर्ग बनाने के लिए आवश्यक है कि (1) पुरुष शक्तिशाली हो-वीर्य रूप ढाल वाला हो (2) उसे जीवन का साथी

अनुकूल मिले, (3) गृहस्थ में भी ये संयम व व्यवस्था से चलें।

98. **यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः।
स ओदनः शतधारः स्वर्गं उभे व्या प नभसी महित्वा।।**

अथर्व0 12/3/5

उपदेश : हम वानस्पतिक भोजनों का ही सेवन करें। यह भोजन हमारे जीवनों को निर्दोष बनाएगा, दीर्घ जीवन का साधन बनेगा, जीवन को सुखी व प्रकाशमय करेगा तथा शरीर को शक्ति सम्पन्न करता हुआ मस्तिष्क को दीप्ति सम्पन्न करेगा।

99. **यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत्पुत्राः परि ये संबभूवुः।
सर्वांस्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानां शिशवः समायान्।।**

अथर्व0 12/3/40

उपदेश : माता-पिता से सन्तान जन्म लेते हैं। बड़े होकर वे भिन्न-भिन्न स्थानों में कार्य करने लगते हैं। उनका भी परिवार बनता है। माता-पिता को चाहिए कि कभी-कभी सन्तानों को परिवार समेत भोजन पर बुलाएँ। उन सबके छोटे-छोटे बालक भी बन्धुत्व का अनुभव करते हुए वहाँ एकत्र हों। वस्तुतः एकत्र होना उन्हें एक-दूसरे के समीप लायेगा।

100. **विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम्।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्यु च्यसे।।**

अथर्व0 12/4/4

उपदेश : वेदाध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। जहाँ वेदाध्ययन है, वहाँ बुराईयों का प्रवेश नहीं।

101. **यदस्याः कस्मैचिद्भोगाय बालान्कश्चित्प्रकृन्तति।
ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः।।**

अथर्व0 12/4/7

उपदेश : माता-पिता को चाहिए कि वे अपने सन्तानों को वेद अवश्य पढ़ायें। 'वेद पढ़ाने से उतना रुपया न कमा पायेगा', इस दिशा में सोचने वाला माता-पिता अपने सन्तानों को मारने वाला भेड़िया ही होता है। वह सन्तानों का कल्याण नहीं कर पाता।

102. हेड पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद्वशाम्।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते।।

अथर्व0 12/4/21

उपदेश : हमें वेदज्ञान को प्राप्त करके अवश्य उसका प्रचार करना चाहिए। वेदज्ञान को चाहने वालों के लिए उसे देना चाहिए। अन्यथा हम पशुओं के भी प्रिय न होंगे। वे हमें उत्तम दूध आदि को प्राप्त कराने वाले न होंगे।

103. प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम्।।

अथर्व0 12/4/37

उपदेश : वेदवाणी का निरादर राष्ट्र की अवनति का, मृत्यु 7(परतन्त्रता) का कारण बनता है।

104. त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा।
ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सो ऽनाव्रस्कः प्रजापतौ।।

अथर्व0 12/4/47

उपदेश : वेदवाणी हमारे जीवनों में 'ज्ञान, कर्म व उपासना' का विकास करती है। मनुष्य इन वेदवाणियों को प्राप्त करके इनका ज्ञान औरों के लिए देने वाला बने, तभी यह प्रभु से दण्डनीय नहीं होता।

105. रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह गर्भो जनीनां जनुषामुपस्थम्।
ताभिः संरब्धमन्वविन्दुन्षडुर्वीर्गातुं प्रपश्यन्निह राष्ट्रमाहाः।।

अथर्व0 13/1/4

उपदेश : वे प्रभु सृष्टि निर्माण की सब सामग्रियों को जन्म देते हैं। इन सामग्रियों को अपने अन्दर धारण करते हुए वे सब पदार्थों में विद्यमान हैं। सब उत्पादक शक्तियों से युक्त प्रभु सब दिशाओं में व्याप्त हैं। वे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर-नीचे सर्वत्र विद्यमान हैं। हम सब के लिए मार्ग दिखलाते हुए वे प्रभु ब्रह्माण्ड रूप राष्ट्र को उत्पन्न करते हैं।

106. **वि रोहितो अमृशद्विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च।**
दिव रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन।।
अथर्व0 13/1/8

उपदेश : प्रभु ने विविध शाखाओं से व्याप्त इस संसार-वृक्ष के निर्माण का विस्तार किया। जब हम उस निर्माता की महिमा का मस्तिष्क में विचार करते हैं, तब वे प्रभु हमारी शक्तियों व ज्ञान का वर्धन करके हमें अलंकृत जीवन वाला बनाते हैं।

107. **यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित।**
शुभा यासि रिणन्नपः।। अथर्व0 13/1/21

उपदेश : प्रकृति चमकती है, जीव का उसकी ओर झुकाव होना स्वाभाविक है। परन्तु जब मनुष्य प्राकृतिक भोगों में विनाश अनुभव करता है, तब वह प्रभु की ओर झुकता है। प्रभु उसे सब सुखों को प्राप्त कराते हैं।

108. **इदं सदो रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति।**
तां गन्धर्वा कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयोऽप्रमादम्।।
अथर्व0 13/1/23

उपदेश : प्रकृति में सर्वत्र प्रभु का वास है। प्रकृति के बने सूर्यादि सब पिण्डों को प्रभु ही प्रकाश प्राप्त कराते हैं। इन सूर्य-चन्द्रादि की भाँति नियमित मार्ग का ये अनुसरण करते हैं। जीव को भी

चाहिए कि वह सूर्य और चन्द्र की भाँति नियमित गति से चले। प्रकृति के बने इस शरीर के रक्षण को भी धर्म समझे।

109. समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः।
अभीषाड् विश्वाषाडग्निः सपत्नान्हन्तु ये मम।।

अथर्व0 13/1/28

उपदेश : स्वाध्याय के द्वारा हम प्रभु के प्रकाश को हृदयों में देखने का प्रयत्न करें। दीप्त होते हुए प्रभु हमारे ज्ञान को और बढ़ाते है और प्रभु ही हमारे शत्रुओं का विनाश करते हैं, हमें कामादि पर विजय प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करते हैं।

110. उत्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति।
तिरः समुद्रमति रोचसेऽर्णवम्।। अथर्व0 13/1/36

उपदेश : हम वेदमन्त्रों के साथ यज्ञ करें तथा इन्द्रियाश्वों को मार्ग से भटकने से बचाएँ। यही संसार से पार होने का मार्ग है। इसी मार्ग से प्रभु को प्राप्त होकर हम दीप्त जीवन वाले बन पाएँगे।

111. आरोहन्द्यामममृतः प्राव मे वचः।
उत्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति।।

अथर्व0 13/1/43

उपदेश : वेदवाणी का नियम से स्वाध्याय करते हुए हम प्रकाश व नीरोगता को प्राप्त करें-दीप्ति मस्तिष्क वाले व नीरोग शरीर वाले बनें। मन्त्रों द्वारा हम यज्ञों को करने वाले हों तथा हमारे इन्द्रियाश्व (ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ) सदा मार्ग पर आगे बढ़ते हुए लक्ष्य स्थान पर पहुँचाएँ।

112. यत्प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी कर्षि मायया।
तदादित्य महि तत्ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम जायसे।।

अथर्व0 13/2/3

उपदेश : पूर्व से पश्चिम तक सर्वत्र प्रभु व्याप्त हो रहे हैं। प्रभु ने अपनी माया से क्या ही सुन्दर दिन व रात्रि का क्रम बनाया है। प्रभु का यश महान है। वे प्रभु सर्वत्र अपनी महिमा से प्रादुर्भूत (प्रकट होना) हो रहे हैं।

113. उभावन्तौ समर्षसि वत्सः समातराविव।
नन्वे३तदितः पुरा ब्रह्म देवा अमी विदुः।।

अथर्व0 13/2/13

उपदेश : सूर्य एक और द्युलोक को तो दूसरी ओर पृथिवी को अपनी किरणों से व्याप्त करता है। पूर्व में उदित होता है, पश्चिम में अस्त होता है। कभी उत्तर की ओर झुका प्रतीत होता है, कभी दक्षिण की ओर। ये सब व्यवस्थाएँ हमारे पालन के लिए आवश्यक हैं। वस्तुतः विचित्र ही है महिमा उस महान प्रभु की!

114. उदु त्यं जातवेदसं देव वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्।। अथर्व0 13/2/16

उपदेश : ज्ञानी लोग हृदयों में प्रभु को धारण करते हैं, उसका स्मरण करते हैं। प्रभु के हृदय में होने पर सम्पूर्ण संसार का ज्ञान प्राप्त हो ही जाता है।

115. पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन्परि द्यामन्तरिक्षम्।
सर्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि।।

अथर्व0 13/2/45

उपदेश : प्रभु की महिमा 'पृथिवी, समुद्र, द्युलोक व अन्तरिक्ष लोक' में सर्वत्र विद्यमान है। वे प्रभु पूजनीय हैं, संगतिकरण-योग्य हैं और समर्पणीय हैं।

जो भी मैं प्रार्थना के रूप में प्रभु से कहता हूँ, प्रभु उसको सुनें। मेरी प्रार्थना न सुनने योग्य न हो। मैं अपने को प्रार्थना सुने

जाने का पात्र बनाऊँ।

116. सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः।।

अथर्व0 14/1/1

उपदेश : सुखी जीवन के लिए पति–पत्नी को निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए –

(क) घर में पति–पत्नी का सत्य व्यवहार ही उनके गृहस्थ जीवन को सुखी बना सकता है। असत्य से वे परस्पर आशंकित मनोवृत्ति वाले होंगे और गृहस्थ के मूलतत्त्व 'प्रेम' को खो बैठेंगे।

(ख) ज्ञान के बिना घर प्रकाशमय नहीं लगता। ज्ञान से ही मापक ऊँचा उठता है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य 'मनुष्य' ही नहीं रहता। ज्ञानशून्य घर का जीवन पशुतुल्य हो जाता है।

(ग) सब कार्यों को व्यवस्था से करना आवश्यक ही है।

(घ) घर में यज्ञों का होना आवश्यक है। ये यज्ञ ही घर को स्वर्ग बनाते हैं।

(ङ) सोम के रक्षण के लिए स्वाध्याय की वृत्ति आवश्यक है। यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। साथ ही इस सोम का रक्षण करने वाले पति–पत्नी उत्तम सन्तानों को जन्म देते हैं।

117. रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन्।। अथर्व0 16/1/2

उपदेश : माता, पिता व आचार्यों की प्रेरणाओं को न सुनने पर तथा प्रभु–ध्यान को छोड़ने से जीवन की स्थिति विकृत (खराब, दूषित) और अति विकृत हो जाती है, शरीर व्याधियों का तथा मन आधियों (मानसिक पीड़ा) का शिकार हो जाता है।

118. म्राको मनोहा खनो निर्दाह। आत्मदूषिस्तनूदूषिः।।

अथर्व0 16/1/3

उपदेश : उत्तम प्रेरणाओं के अभाव में मन बड़ा अशान्त हो जाता है। यह 'कामवासना' का शिकार होता है। यह 'काम' मन को चंचल व अशान्त कर देता है। चिन्तन की शक्ति रह ही नहीं जाती–उत्साह नहीं रहता। मन व शरीर को कामवासना दूषित कर देती है।शरीर की सब शक्तियों का भी यह अवधारण करके हृदय में जलन का कारण बनती है।

119. **रपदग्न्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु नो मनः।**
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति।।

अथर्व0 18/1/19

उपदेश : आदर्श घर वही है जिसमें पति–पत्नी 'प्रभु का स्तवन करने वाले, स्वाध्यायशील व पवित्र वृत्ति वाले' हैं। प्रभु कृपा से उनका मन यज्ञ प्रवण बना रहता है। उस घर में यह नियम होता है कि बड़े ने कहा और छोटे ने किया। यही देवपूजा है।

120. **श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्।**
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः।।

अथर्व0 18/1/25

उपदेश : हम प्रभु की प्रेरणा को सुनें। क्रियाशील बनें। वाणी व सब व्यवहार को मधुर बनायें। शरीर को स्वस्थ व मस्तिष्क को दीप्त रखें। सदा सत्संग की रुचि वाले हों।

121. **स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी।**
विश्वेदेवा अनु तत्ते यजुर्गर्दहे येदनी दिव्यं घृतं वाः।।

अथर्व0 18/1/32

उपदेश : जब एक मनुष्य गोदुग्ध व वानस्पतिक भोजनों का सेवन करता है तब उसका शरीर व मस्तिष्क दोनों बड़े उत्तम बनते हैं और इस मनुष्य का झुकाव प्राकृतिक भोगों की ओर न होकर प्रभु की

ओर होता है। प्रभु की ओर झुकाव होने पर दिव्य गुण प्राप्त होते हैं, और ज्ञान की वाणी हमें ज्ञानदीप्ति व नीरोगता प्राप्त कराती है।

122. दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विपुरुपा भवाति।
यमस्य यो मनवते समुन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन्।।

अथर्व0 18/1/34

उपदेश : प्रकृति की चमक के कारण यहाँ–इस संसार में मनुष्य प्रभु को भूल जाता है, प्रभु–नाम स्मरण से दूर हो जाता है। परन्तु जब भी हम उस प्रभु के नाम का स्मरण कर पाते हैं, तब प्रभु के द्वारा रक्षणीय होते हैं।

123. स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु भूमौ।
मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम्।।

अथर्व0 18/1/39

उपदेश : सर्वव्यापक होते हुए भी प्रभु हमारे हृदयों में विशेष रूप से उपासनीय होते हैं। उस समय हमारा सारा वातावरण बहुत सुन्दर बनता है। प्रभु का उपासक जब स्नेह व निर्द्वेषता वाला बनता है, तब उसका हृदय प्रभु–दीप्ति से दीप्त हो उठता है।

124. यमाय घृतवत्पयो राज्ञे हविर्जुहोतन।
स नो जीवेष्वा यमेद्दीर्घमायुः प्र जीवसे।।

अथर्व0 18/2/3

उपदेश : हम सर्वनियन्ता, सर्वरक्षक प्रभु की प्राप्ति के लिए 'घृत–दुग्ध ा व यज्ञीय भोजनों का ही प्रयोग करें। दीर्घ जीवन प्राप्त करके साध ाना द्वारा उसे प्रकृष्ट (उत्तम) बनाने के लिए यत्नशील हों।

125. इदं त एक पर ऊ त एक तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्य।
संवेशने तन्वा३ चारुरेधि प्रियो देवाना परमे सधस्थे।।

अथर्व0 18/3/7

उपदेश : हम 'प्रकृति, जीव व परमात्मा' का ज्ञान प्राप्त करें। अपनी शक्तियों का विस्तार करते हुए सुन्दर जीवन वाला बनें। दिव्यगुण हमें प्रिय हों। अन्तर्दृष्टि बनें–हृदय में प्रभु के समीप बैठने वाले बनें।

126. अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्त्रन्नुषसो विभातीः।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।

अथर्व0 18/3/24

उपदेश : हम प्रातः जप करें,यज्ञ करें, स्वाध्याय को अपनाएँ। देवों से प्रेरित कर्मों को करें। परस्पर मिलने पर ज्ञान चर्चाओं को करें और वीर बनें।

127. अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते।
तस्मिन्कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम्।।

अथर्व0 18/3/54

उपदेश : आत्मनिरीक्षण करने वाला व स्थिर वृत्ति वाला मनुष्य शरीर को प्रभु–प्राप्ति का साधन समझता है। इसी उद्देश्य से वह शरीर में सोम का रक्षण करता है। इस शरीर में वह पवित्र भोजनों को करता हुआ पवित्र वृत्ति वाला बनता है।

128. शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः पितृषदने त्वा लोक आ सादयामि।।

अथर्व0 18/4/67

उपदेश : घरों में कई बार छोटी–मोटी समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। यदि घरों में पितरों (बड़ों) का आदर बना रहता है तो पितर समुचित प्रेरणाओं के द्वारा उन समस्याओं को सुलझा देते हैं। इस प्रकार घरों की शोभा बनी रहती है।

जब कभी पितर वानप्रस्थाश्रम से घर पर आएँ, उन्हें आदरपूर्वक निवास कराया जाय। उनकी प्रेरणाओं को शिरोधार्य

किया जाय। ऐसा होने पर घर शोभामान बने रहते हैं।

129.यामाहुतिं प्रथमामथर्वा या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः।
तां त एतां प्रथमो जोहवीमि ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा।।

अथर्व0 19/4/1

उपदेश : प्रभु की सर्वप्रथम देन वेदज्ञान है। प्रभु सृष्टि के प्रारम्भ में इसका अग्नि आदि ऋषियों के हृदय में प्रकाश करते हैं। हम भी इस वेदज्ञान की याचना करते हैं। वेदवाणियों द्वारा स्तुत प्रभु हमारे लिए सब हव्य पदार्थों को प्राप्त करायें। हम उस प्रभु के प्रति अपना अर्पण करते हैं।

130. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्य म्।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह।। अथर्व0 19/6/4

उपदेश : वे परमपुरुष प्रभु वर्तमान, भूत व भविष्य में होने वाले सब ब्रह्माण्डों के स्वामी हैं। मुक्त आत्मा भी प्रभु के शासन में होते हैं और मुक्तिकाल की समाप्ति पर पुनः प्रभु की व्यवस्था से शरीर धारण करते हैं।

131. अपपापं परिक्षवं पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम्।।

अथर्व0 19/8/5

उपदेश : हम पवित्र अन्न का सेवन करें, प्राणसाधना को अपनाएँ तथा प्रभु का स्मरण करें। यही मार्ग है जिससे हमारा जीवन निष्पाप बन सकेगा।

132. सोम ओषधीभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु।।

अथर्व0 19/19/5

उपदेश : हम ओषधि-वनस्पतियों को ही अपना भोजन बनाकर सौम्य

स्वभाव के बनें। यह सौम्यता ही हमें ब्रह्म की ओर ले चलती है।

मांस भोजन हमें क्रूर बनाता है और प्रभु से दूर करने वाला होता है।

133. तिस्त्रो दिवे अत्यतृणत्तिस्त्रः इमाः पृथिवीरुत।
त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि।।

अथर्व0 19/32/4

उपदेश : 'स्थूल, सूक्ष्म व कारण' भेद से तीन शरीर ही तीन पृथिवियाँ हैं। वीर्यरक्षण से ये तीनों नीरोग व निर्दोष बनते हैं। इसी प्रकार प्रकृति, जीव व परमात्मा का ज्ञान ही त्रिविध द्युलोक है, वीर्य रक्षा ही इस द्युलोक को अज्ञानान्धकार शून्य करता है। वीर्यरक्षक पुरुष व्यवहार में इतना मधुर होता है कि इसके मधुर वचनों से दुष्ट पुरुष भी शान्त हो जाता है।

134. यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्ये ण तेन मा देवास्तपसावतेह।।

अथर्व0 19/72/1

उपदेश : हम प्रतिदिन प्रभु-स्मरण के साथ वेदाध्ययन का आरम्भ करें। समाप्ति पर भी प्रभु-स्मरण करें। वेदज्ञान के अनुसार यज्ञादि कर्मों को करें। ये वेदाध्ययन ही हमारा तप हो। इसके द्वारा हम अपना रक्षण कर पायें।

135. उद्वेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्।
अस्तारमेषि सूर्य।। अथर्व0 20/7/1

उपदेश : प्रभु-प्राप्ति उसे होती है जो (क) अपने में ज्ञान और शक्ति का समन्वय करता है (ख) शक्तिशाली बनता है, (ग) लोकहितकर कर्मों में प्रवृत्त होता है, (घ) वासनाओं को अपने से दूर करता है।

136. आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वराइव।।
अथर्व0 20/25/2

उपदेश : प्रभु स्तवन करते हुए हम हृदय में प्रभु के प्रकाश को देखते हैं। आगे बढ़ते हुए हम देववृत्ति के बनकर प्रभु को प्राप्त करते हैं। उसज्ञान के द्वारा प्रीणित करने वाले प्रभु को ही हम प्रीतिपूर्वक उपासित करते हैं।

137. बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति।।
अथर्व0 20/25/6

उपदेश : प्रभु का निवास उन घरों में होता है, जहाँ लोग (क) अपने हृदयों को पवित्र बनाते हैं, (ख) जहाँ प्रभु के स्तोत्रों का उच्चारण होता है, (ग) जहाँ स्वयं 'ज्ञानप्रधान कर्मशील स्तोता' बनकर सन्तानों को कर्त्तव्य-पथ का उपदेश दिया जाता है।

138. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्।
चक्राण ओपशं दिवि।। अथर्व0 20/27/5

उपदेश : जब हम यज्ञात्मक कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, तब हमारे हृदयों में प्रभु का प्रकाश बढ़ता है। यज्ञ अर्थात् 'देवपूजा, संगतिकरण व दान' में हम जितना जितना बढ़ते हैं, उतना-उतना प्रभु के समीप होते जाते हैं।

देवपूजा हमें प्रभु का उपासक बनाती है, संगतिकरण में हम प्रभु की गोद में पहुँच जाते हैं और दान (अर्पण) करके हम प्रभु में प्रविष्ट होकर प्रभु के साथ 'एक' हो जाते हैं। इस प्रकार हमारा शरीर नीरोग बनता है और मस्तिष्क ज्ञान से अलंकृत हो जाता है।

139. यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।
अथर्व0 20/34/1

उपदेश : प्रभु सदा से प्रादुर्भूत है। प्रभु 'कभी जन्म लेते हो' ऐसी बात नहीं। वे सदा से हैं। वे अधिक से अधिक विस्तार वाले हैं। ज्ञान वाले हैं। ये दिव्य 'गुणयुक्त प्रभु सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र आदि देवों को शक्ति से अलंकृत करते हैं। प्रभु की महिमा से ही ये सब देव देवत्व को प्राप्त करते हैं। प्रभु की शक्ति के भय से ही अग्नि आदि देव अपना-अपना कार्य ठीक से कर रहे हैं।

140. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः।।
अथर्व0 20/34/14

उपदेश : सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रभु के शासन में है। वे प्रभु अनन्त शक्ति वाले व सर्वद्रष्टा है। दुष्टों को दण्डित करके ठीक मार्ग पर लाने वाले हैं।

141. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम्।।
अथर्व0 20/37/6

उपदेश : प्रभु यज्ञशील दानी व वासनाओं से ऊपर उठे हुए व्यक्तियों को धन प्राप्त कराते हैं। प्रभु के उपासक सदा इन्द्रियों को कर्त्तव्यकर्मों में लगाये रखकर ज्ञान व शक्ति प्राप्त करते हैं।

142. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः।। अथर्व0 20/47/12

उपदेश : साधक (1) अज्ञानियों के लिए ज्ञान देने वाला बनता है। इसके जीवन का उद्देश्य ज्ञान-प्रसार हो जाता है, (2) अदीप्त

जीवन वालों को दीप्त जीवन वाला बनाता है। यह मनुष्यों को ज्ञान देकर उन्हें ठीक मार्ग पर ले चलता है, उन्हें प्राकृतिक पदार्थों के यथायोग्य प्रयोग की प्रेरणा देता है और (3) उष: काल में जागकर अपने कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है।

143. शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन्विराजति।
विमदन्बर्हिरासरन्।। अथर्व0 20/49/3

उपदेश : हम प्रभु की वाणी को सुनने में कभी प्रमाद न करें। यह प्रभु वाणी-श्रवण हमें तेजस्वी बनायेगा, धर्म प्रवण करेगा, आनन्दमय जीवन वाला बनाएगा तथा हमें हृदयान्तरिक्ष की ओर गति वाला, अर्थात् आत्मनिरीक्षण की वृत्ति वाला बनाएगा।

144. बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्।।
अथर्व0 20/58/4

उपदेश : प्रभु अपने ज्ञान के कारण महान हैं-वे एक पूर्ण सृष्टि का निर्माण करते हैं। अपनी महिमा से देवों के अन्दर प्राणशक्ति का संचार करते हैं और उन्हें हितकर प्रेरणा देते हैं। प्रभु एक व्यापक अहिंस्य ज्योति हैं।

145. मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भवत्।।
अथर्व0 20/59/4

उपदेश : वेदज्ञान के अनुसार कर्म करने पर जीवन का बड़ा सुन्दर निर्माण होता है। प्रभु-स्मरणपूर्वक कर्म करने पर हमारा जीवन व्रतमय बना रहता है और हम संसार के विषयों में फँसते नहीं।

146. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी मुमुक्तमेनम्।।

अथर्व0 20/96/6

उपदेश : अग्निहोत्र में डाले गये हविर्द्रव्यों से हम रोगमुक्त हो पाते हैं। सब अज्ञात रोग–राजयक्ष्मा व ग्राहि नामक रोग सूर्य व अग्नि के द्वारा दूर किये जाते हैं।

147. अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्।।

अथर्व0 20/99/1

उपदेश : प्रभु स्मरण ही –

(1) ब्रह्मचारी को सोम रक्षण के योग्य बनाता है।

(2) गृहस्थ भोग प्रसक्त नहीं होता।

(3) वनस्थ को स्वाध्याय–प्रवृत्त करके दीप्त जीवन वाला बनाता है।

(4) संन्यस्त को सब कमियों से दूर रहने में समर्थ करता है।

148. यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्दुरेवासः कशोकाः।।

अथर्व0 20/107/7

उपदेश : हम धन को प्रभु से प्राप्त हुआ जानें। ये धन हमारी ओजस्विता व चित्तवृत्ति की स्थिरता को नष्ट करने वाला न हो।

प्रभु–उपासना होने पर धन के विजय का अहंकार नहीं होता, विषयों की ओर झुकाव न होकर ओजस्विता बनी रहती है तथा धन का विषयों में विनाश भी नहीं होता।

149. **कोशबिले रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम्।**
उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तमां जनीन्वर्त्मन्यात्।।

अथर्व0 20/135/2

उपदेश : हम जीवन में धन की एक सीमा का निर्धारण करें।धन की वृद्धि ही तो जीवन का उद्देश्य नहीं। जीवन के लिए आवश्यक धन के होने पर धन को ही बढ़ाने में लगे रहना समझदारी नहीं। गृहस्थ से ऊपर उठकर वानप्रस्थ बनने को तैयार हों। उत्तम सन्तानों को जन्म देने के बाद अब सर्वोत्तम शक्तियों के विकास के लिए तैयारी करें।

150. **त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्रः।**
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रण धाः।।

अथर्व0 20/137/10

उपदेश : 'काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर व अविद्या'– ये हमारे प्रबल शत्रु हैं। इनका शातन (समाप्ति) करके ही हम मस्तिष्क व शरीर को स्वस्थ कर पाते हैं और तभी सब अंगों के लिए रमणीयता को धारण करने वाले होते हैं।

वैदिक प्रार्थना–1

हे सकल जगत के उत्पत्तिकर्ता परमात्मन्, इस अमृत वेला में आपकी कृपा और प्रेरणा से आपको श्रद्धा से नमस्कार करते हुए उपासना करते हैं कि हे दीन बन्धु आपकी पवित्र ज्योति जगमगा रही है। सूर्य, चन्द्र, सितारे आपके प्रकाश से इस भूमंडल को प्रकाशित कर रहे हैं, भगवान् आप हमारी सदा रक्षा करते हैं। आप एक रस हैं, आप दया के भण्डार हैं, दयालु भी हैं और न्यायकारी भी हैं। आप सब प्राणिमात्र को उनके कर्मों के अनुसार गति प्रदान करते हैं, हम आपको, संसार के कार्य में फंसकर भूल जाते हैं परन्तु आप हमारा कभी त्याग नहीं करते, हम यही प्रार्थना करते हैं कि मन, कर्म, वाणी से किसी को दु:ख न दें, हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण व व्यवसनों और दु:खों को दूर करें और कल्याण कारक गुण, कर्म और शुभ विचार प्राप्त करायें।

प्रभु हमारी वाणी में मिठास हो, हमारे आचार तथा विचार शुद्ध हों, हमारा सारा परिवार आपका बनकर रहे, उनको मेधा बुद्धि प्रदान करें और दीर्घ आयु तक हम शुभ मार्ग पर चलते रहें और सुखी जीवन व्यतीत करें। हमारे कर्म भी उज्जवल और स्वच्छ हों, सर्वपालक सर्वपोषक सारे जगत् के रचने वाले पिता दुष्ट कर्मों से बचाकर हमको उत्तम बुद्धि और पराक्रम प्रदान कीजिये। हमको केवल मात्र आपका सहारा है। हमारी कर्म तथा ज्ञान इन्द्रियों को शुभ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देवें और इनको बल देवें ताकि सब शुभ सुनें, शुभ देखें, शुभ मार्ग पर चलें, शुभ सोचें और निष्काम भाव से प्राणी मात्र की सेवा करते हुए अन्त में आपकी ज्योति को प्राप्त हों।

ओ३म् शान्ति:! शान्ति:! शान्ति!

वैदिक प्रार्थना-2

हे सर्वाधार, सर्वान्तर्यामिन् परमेश्वर! आप अनन्तकाल से अपने उपकारो की वर्षा किये जाते हो। प्राणिमात्र की सम्पूर्ण कामनाओं को आप ही प्रतिक्षण पूर्ण करते हो। हमारे लिए जो कुछ शुभ और हितकर है उसे आप बिना माँगे स्वयं हमारी झोली में डालते जाते हो, आपके आँचल में अविचल शान्ति तथा आनन्द का वास है। आपकी चरण-शरण की शीतल छाया में परम तृप्ति है, शाश्वत सुख की उपलब्धि है तथा सब अभिलषित पदार्थों की प्राप्ति है।

हे जगत्पिता परमेश्वर! हममें सच्ची श्रद्धा तथा विश्वास हो। हम आपकी अमृतमयी गोद में बैठने के अधिकारी बनें। अन्त:करण को मलिन बनाने वाली स्वार्थ तथा संकीर्णता की सब क्षुद्र भावनाओं से हम ऊँचे उठें। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि कुटिल भावनाओं तथा सब मलिन वासनाओं को हम दूर करें। अपने हृदय की आसुरीय प्रवृत्तियों के साथ युद्ध में विजय पाने के लिए हे प्रभो! हम आपको ही पुकारते हैं और आपका ही आँचल पकड़ते हैं।

हे परम पावन प्रभो! हममें सात्त्विक प्रवृत्तियाँ जाग्रत हों। क्षमा, सरलता, स्थिरता, निर्भयता, अहंकार-शून्यता इत्यादि शुभ भावनाएँ हमारी सम्पत्ति हों। हमारा शरीर स्वस्थ तथा परिपुष्ट हो, मन सूक्ष्म तथा उन्नत हो, आत्मा पवित्र तथा सुन्दर हो। आपके संस्पर्श से हमारी सारी शक्तियाँ विकसित हों। हृदय दया तथा सहानुभूति से भरा हो। हमारी वाणी में मिठास हो तथा दृष्टि में प्यार हो। विद्या और ज्ञान से हम परिपूर्ण हों। हमारा व्यक्तित्व महान् तथा विशाल हो।

हे प्रभो! अपने आशीर्वादों की वर्षा करो। दीनातिदीनों के मध्य में विचरने वाले आपके चरणारविन्दों में हमारा जीवन अर्पित हो। इसे अपनी सेवा में लेकर हमें कृतार्थ करें।

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः !! शान्तिः !!

राष्ट्रीय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायता-माराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽ ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।

यजु. अ. 22 मन्त्र 22

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्मतेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी।।
होवें दुधारु गौएँ, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही।।
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें।।
फल-फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी।
हो योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी।।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

भावार्थ :- हे प्रभु! तुम ही माता हो, तुम ही पिता हो, तुम ही बन्धु हो, तुम ही सखा हो, तुम ही गुरु हो, तुम ही आचार्य हो, तुम ही विद्या हो, तुम ही धन हो, हे प्रभु! मेरा यह सम्बन्ध आपके साथ सदा बना रहे।